जैसे-जैसे वक्त गुजरेगा भगत सिंह और होते जाएंगे प्रासंगिक :कुलदीप नैयर

गांधी, भगत सिंह, नेहरु और गांधी समेत तमाम राजनीतिक मसलों समेत पाकिस्तान को लेकर कुलदीप नैयर का क्या था नजरिया, जानने के लिए पढ़िए साक्षात्कार

वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर से विश्वदीपक की बातचीत

वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर महाभारत के संजय की तरह थे। पिछले सात दशकों से इस भारतीय प्रायद्वीप में घटी सभी बड़ी घटनाओं को उन्होने अपनी निगाहों से देखा, महसूस किया। भारत-पाकिस्तान और बंग्लादेश के आसमान में कुलदीप की निगाहें हमेंशा चौकन्नी रहती थी। देश विभाजन, पाकिस्तान से युद्ध, गांधी की हत्या, इंदिरा का आपातकाल, बंग्लादेश का निर्माण, पंजाब में आतंकवाद,इंदिरा -राजीव गांधी की हत्या, बाबरी मस्जिद का विध्वंस हर एक घटना के गवाह रहे हैं कुलदीप नैयर। देश-विदेश करीब 80 पत्र-पत्रिकाओं ने उनके लेख-रिपोर्ट छपते हैं। स्टेटस्मैन और द इंडियन एक्सप्रेस जैसे अखबार से लंबे समय तक जुड़े रहे।

सबसे पहले शुरुआत आपके जन्म से। आपका जन्म 14 अगस्त को हुआ था। बड़ा दिलचस्प इत्तफाक है। आप उस दिन पैदा हुए जब पाकिस्तान बना। पैदा हुए पाकिस्तान में और आपका देश हिंदुस्तान ?

हां, क्या कहें इसे। अब इत्तफाक है तो है। मैं 14 अगस्त 1923 को सियालकोट में पैदा हुआ। और इसी दिन पाकिस्तान भी बना। लेकिन एक बात ये है कि पहले मैं पैदा हुआ उसके बाद पाकिस्तान पैदा हुआ।

आपके लेखन को प्रो पाकिस्तानी माना जाता है ?

मैं प्रो पाकिस्तान नहीं हूं लेकिन एंटी पाकिस्तान भी नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि दोनों देश के बीच मित्रता हो। अमन चैन कायम हो। और लोगों में संबंध बढ़ें। ताल्लुकात बेहतर हों। लोगों के स्तर पर भी और सरकार के स्तर पर भी। हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों के प्लूरलिज्म कायम रहें।

ये सच है कि पाकिस्तान का जन्म धर्म के आधार पर हुआ था, लेकिन 13 अगस्त को ही जिन्ना ने साफ साफ कह दिया था कि या तो आप हिंदुस्तानी हैं या पाकिस्तानी। हर आदमी अपने अपने हिसाब के मंदिर मस्जिद गुरुद्वारा जा सकता है। पाकिस्तान के जन्म से एक दिन पहले ही जिन्ना ने राजनीति और धर्म को अलग कर दिया था।

जिन्ना हमारे देश में विलेन तौर पर याद किए जाते हैं। देश के विभाजन के लिए जिम्मेदार खलनायक के तौर पर हिंदुस्तान की मानसिकात में उनकी छवि है। आपकी जिन्ना से मुलाकात हुई थी ?

जिन्ना मैटर ऑफ फैक्ट के आदमी थे। वो कोई दूसरे नेताओं की तरह आदर्श नहीं बघारते थे। और न ही कोई भाषण देते थे। उनको जो करना था वो करते थे। मुझे याद है जिस कॉलेज में मैं पढ़ता था जिन्ना उसमें एक बार भाषण देने आए थे। जिन्ना ने वो छोटा वाला चश्मा (मोनो लॉग) पहन रखा और हरे रंग का सूट पहना था। लेकिन वहां सुनने वालों की कमी थी। तो मेरा एक दोस्त हबीब जो कश्मीरी था और मुस्लिम लीग का सदस्य था। उस समय तक ऐसा हो चुका था कि हिंदू कॉग्रेसी होने लगे थे और मुसलमान मुस्लिम लीक के साथ थे। उसने हम सबको जिन्ना का भाषण सुनने के लिए बुलाया था। लेकिन अच्छा होता कि जिन्ना भारत से अलग न होते। उस इलाके में (पाकिस्तान का वर्तमान पंजाब) में जिन्ना का असर नहीं था। उनका ज्यादा असर यूपी बिहार और बंगाल में था। अब इस इलाके को मिलाकर पाकिस्तान तो बनाया नहीं जा सकता लिहाजा पश्चिमी हिस्से को मिलाकर ही पाकिस्तान बना।

कायदे आजम जिन्ना का जो स्थान पाकिस्तान में है वही स्थान भारत में महात्मा गांधी का है। महात्मां गांधी को आपने पहली बार कब और कहां देखा। और अब जबकि पूरी दुनिया को अहिंसा की सबसे ज्यादा जरूरत हैं कैसे याद करते हैं गांधी को ?

देखो, गांधी जी से मेरी सीधी मुलाकात कभी नहीं हुई। मैंने गांधी जी को बिड़ला हाउस के लॉन में देखा था। मैं जब विभाजन के बाद जब पाकिस्तान से आया तो दरियागंज में अपनी मौसी के यहां रुका। 13 सितंबर को मैं पाकिस्तान से चला था और 15 या 16 को मै दिल्ली पहुंचा। और सीधे भागकर गांधी को देखने के लिए बिड़ला हाउस पहुंचा। उस वक्त गांधी जी लॉन में टहल रहे थे। और उनके साथ वही दो लड़कियां (उनका इशारा आभा और -की ओर था) थी। मैंने उनको गेट के बाहर से ही प्रणाम किया था। हां, जब उनकी हत्या हुई थी तब मैंने उसको रिपोर्टर के तौर पर जरूर कवर किया था।

आजादी के बाद राष्ट्रभाषा को लेकर काफी विवाद हुआ था। कहते हैं कि पंडित नेहरू अंग्रेजी को 'सबिसिजडियरी' भाषा लिख देने से नाराज हो गए थे। और फिर इस मसले में आपको भी सफाई देनी पड़ी थी ?

देखो, बात उस समय की जब मैं गृहमंत्री पंडित गोविंद बल्लभ पंत के साथ काम कर रहा था। नेहरू प्रधानमंत्री थे। नेहरू संसदीय समिति की उस रिपोर्ट से नराज थे जिसमें पंत जी ने अंग्रेजी के आगे सबसिडियरी लिख दिया था। पंत जी ही उस संसदीय समिति के अध्यक्ष थे। तब पंत ने मुझसे कहा कि आप दिल्ली की हर लाइब्रेरी की खाक छान मारिए। और जितनी भी डिक्शनरी मिले देखिए। मैंने कई डिक्शनरी देखी और फिर पंत जी को बताया कि सबसिडियरी और एडिशनल करीब-करीब एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं।

ऐसा नहीं था कि नेहरू के मन में हिंदी को लेकर हिकारत का भाव था लेकिन वो चाहते थे कि जो नॉन हिंदी के लोग हैं उन्हें भी हिंदी आनी चाहिए। और फिर,उत्तर पूर्व,दक्षिण के लोग तो बिल्कुल भी हिंदी नहीं जानते थे इसीलिए वो मानते थे कि आजादी के बाद ही कहीं भाषा के मसले पर विरोध न होने लगे। इसीलिए वो चाहते थे कि हिंदी को तब तक न लागू किया जाय जब तक नॉन हिंदी भाषी लोग इसे स्वीकार नहीं कर लेते।

नेहरू को एक राजनेता और राष्ट्रनिर्माता के रूप में कैसे याद करते हैं? आधुनिक भारत के निर्माण के लिए उनका क्या सोच थी, क्या रोडमैप था ?

नेहरू से मेरी 2-3दफा की मुलाकाते हैं। नेहरू की सोच आधुनिक थी। अंग्रेजी के मामले में उनकी यही सोच काम करती थी। उनका मानना था कि अंग्रेजी वर्ल्ड लैंग्वेज है। पर सियालकोट में मैंने पहली बार नेहरू को देखा था। मेरे ख्याल से 1939 के आसपास की बात है। चुनाव प्रचार पर आए थे। नेहरू का ड्रेस तो वही था जो वो पहनते थे लेकिन उस दिन नेहरू ने उस दिन गुलाब नहीं लगा रखा था। मुझे याद है। उनके साथ शाह शेख अबदुल्ला भी थे।

आपने माउंटबेट को कवर किया है। लेडी माउंटबेटन से भी आप मिले थे। नेहरू और लेडी माउंटबेटन के बीच अफेयर की चर्चा आज तक होती है। कैसा प्यार था ये प्लूटोनिक या कुछ और ?

देखो, मैंने बहुत कोशिश की इस बारे में तथ्य जुटाने की। तुम्हें क्या लगता है कि एक पत्रकार के रूप में मैं इस बड़े स्कूप को छोड़ता कभी। मैंने पूरी कोशिश की, मेहनत की लेकिन कामयाब नहीं हो पाया। यहां तक कि मैंने सोनिया गांधी से भी नेहरू की पत्रावली देखने की इजाजत मांगी लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया। नेहरू के पत्र वगैरह तो अभी इन लोगों के पास हैं। दोनों के बीच प्यार रहा होगा। लेकिन बहुत व्यक्तिगत था वो। सार्वजनिक जीवन में कभी भी इसका प्रदर्शन नहीं हुआ।

कॉलेज के जमाने में आप जिन्ना से मिले। गांधी को भी देखा और नेहरू के साथ काम किया लेकिन जब किताब लिखने की बारी आई तो आपने भगत सिंह को चुना क्यों ? क्या आप उनसे प्रभावित हैं?

हां, मैं भगत सिंह से प्रभावित हूं। वो 23 साल की उम्र में मर गया देश के लिए शहीद हो गया। उसके विचार कम उम्र होने के बाद भी जबर्दस्त क्रांतिकारी थे। लेकिन किताब लिखने का विचार 80 के दशक में लाहौर में आया। मैं वहां गया हुआ था एक पंजाबी सम्मेलन में। वहां मैंने देखा कि पूरे हॉल में सिर्प और सिर्फ एक तस्वीर है। वो है भगत सिंह की। मैंने आयोजकों से पूछा कि यहां तुम लोगों ने भगत सिंह की तस्वीर क्यों लगा रखी है। यहां तो इकबाल की तस्वीर होनी चाहिए जिन्होने पाकिस्तान का स्वप्न देखा था। उन लोगों ने कहा कि सिर्फ एक ही पंजाबी ने देश के लिए कुर्बानी दी है और वो है भगत सिंह। तभी मैंने तय कर लिया कि भगत सिंह और उनके दर्शन को देश के सामने सपष्ट करना है। वैसे तो उनके बारे में लगभग हर बात लिखी जा चुकी है लेकिन एक क्रांतिकारी और एक आतंकवादी के बीच के फर्क को ऐतिहासिक खोजबीन और तथ्यों के जरिए स्पष्ट करना जरूरी था।

भगत सिंह की क्या प्रासंगिकता है आज के जमाने में। खासतौर से तब जब गांधी के बरक्स उनकी तुलना की जाती है। कहा जाता है कि गांधी भगत कि बढ़ती लोकप्रियता से परेशान थे। वो चाहते तो इरविन के साथ समझौते के दौरान भगत को बचा सकते थे ?

भगत सिंह की प्रासंगिकता पहले भी थी। और आज भी है। बल्कि मैं तो ऐसे कहता हूं कि ज्यों-ज्यों वक्त गुजरेगा भगत की प्रासंगिकता बढ़ती जाएगी। वो जवान था और हीरो था। युवा वर्ग हमेशा भगत के विचारों के प्रभावित होगा। गांधी की भी प्रासंगिकता बढ़ेगी लेकिन दोनों के बीच अंतर तरीकों का है और वो रहेगा। भगत सिंह बंदूक (हिंसा का रास्ता) छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और गांधी को ये मंजूर नहीं था। गांधी को हिंसा कतई मंजूर नहीं थी। उन्होंने इरविन से कहा भी था कि इसको छोड़ दीजिए। लेकिन न तो भगत अपना रास्ता छोड़ने के लिए तैयार थे और न ही अंग्रेज भगत को छोड़ना चाहते थे। गांधी जी ने भगत की लोकप्रियता से डरकर नहीं, बल्कि अपने उसूलों की वजह से नहीं बचा पाए। अब कॉग्रेस का कराची सम्मेलन ही ले लीजिए। पहले गांधी की बात नहीं सुनी गई लेकिन आखिर में गांधी की ही बात माननी पड़ी।

एक गांधी और थी इंदिरा गांधी। जिन्होंने देश पर आपातकाल लगाया था। आपको भी जेल में बंद कर दिया था। इंदिरा को कैसे आंकते हैं आप ?

इंदिरा के साथ हमारे संबंध तो दोस्ती के थे। एक दफा वो बाल कटा के आई तो उसने मुझसे पूछा कि देखो मैं कैसी लग रही हूं। लेकिन जब उसने आपातकाल लगाया था तब उसने मुझे भी बंद कर दिया। तिहाड़ जेल में बंद था मैं। हालांकि उसने तब के दिल्ली कमिश्नर को मेरे पास हाल चाल लेने के लिए भेजा था। लेकिन मुझे मेरे गिरफ्तारी की वजह पता नहीं चल पा रही थी। बात में पता चला कि इंदिरा मेरे लिखने से नाराज थी। मैंने उसको एक चिट्ठी लिखी थी और कहा था कि तुम्हारे पिता कहा करते थे कि मुझे गैर जिम्मेदार (irresponsible press) प्रेस मंजूर है, लेकिन प्रेस पर पांबदी कतई मंजूर नहीं। और तुमने तो प्रेस को ही बैन कर दिया। इंदिरा ने कहा कि प्रेस वाले अनाप—शनाप लिखने लगे हैं और गैर जिम्मेदार चीजें छप रही हैं।

अच्छा, इंदिरा के पति फिरोज को भी देखा होगा आपने। गांधी परिवार की लिगेसी में वो कहीं फिट नहीं बैठते। कहीं भुला दिए गए हैं वो। क्या उनको जान-बूझकर दरकिनार किया गया ?

गांधी परिवार की लिगेसी में फिट बैठने का कोई कारण नहीं लेकिन यही गांधी परिवार के ही लोग हैं जो उनको फिट नहीं होने देते। जानबूझकर। वैसे वो बहुत जबर्दस्त आदमी थे। संसद में फिरोज के नाम का हॉरर (खौफ) रहता था। वो जोरदार वक्ता थे। उस जमाने के घोटालों का पर्दाफाश उन्होने ही किया था। उद्योगपतियों में फिरोज के नाम का खौफ रहता था। संचार घोटाले को फिरोज ही सामने लाए थे।

पत्रकारिता का आपका बड़ा लंबा कैरियर है। क्या अनुभव हैं आपके पत्रकारिता के बारे में। पिछले कई सालों में तेजी से बदलाव हुए हैं। आपने शुरुआत तो उर्दू रिपोर्टर के तौर पर की थी ?

हां,सच बात है मैंने अपना कैरियर उर्दू रिपोर्टर के तौर पर शुरु किया था। जब मैं पाकिस्तान से भारत आ गया थां। चांदनी चौक में रह रहा था। मेरे आहाते में ही एक आदमी दिन भर खांसता रहता था। बड़ा डिस्टर्ब होता था। मैंने पूछा लोगों से कि भई कौन है ये। पता चला कि वो मौलाना मोहना साहब थे। मैं उनके पास गया। उन्होने मुझसे पूछा कि क्या करते हो मैंने कहा कि उर्दू रिपोर्टर हूं। तब मैं 'वहादत' के लिए लिखा करता था। धीरे धीरे उनसे दोस्ती हो गई। उन्होने मुझे दो सलाह दी थी। पहला ये कि शेर ओ शायरी करना छोड़ दो दूसरा उर्दू में नहीं अंग्रेजी में लिखना शुरु करो- देश में उर्दू का कोई भविष्य नहीं।

हिंदी पत्रकारिता के बारे में क्या ख्याल है आपका। पिछले कुछ सालों में तो पैसा लेकर खबरें छापने की बातें सामने आई हैं। जब तक जिंदा थे प्रभाष जोशी इस मामले में लिख रहे थे और इसको जोर शोर से उठा रहे थे ?

देखिए हिंदी की सबसे बड़ी समस्या ये है कि हिंदी का संपादक पढ़ता ही नहीं। कुछ लोगों को छोड़कर। अपवाद हर जगह होते हैं। अब आज हिंदी पत्रकारिता में कोई खबर के लिए नहीं होती। अब तो वही है जो पिया मन भाए। यानि मालिकों को जो पसंद हो वही छपेगा। बात ऐसी भी नहीं है कि केवल हिंदी पत्रकारिता का स्तर गिरा है। स्तर अंग्रेजी पत्रकारिता का भी गिरा है, लेकिन फिर भी यहां स्थिति थोड़ी बेहतर है।

आप राज्यसभा सांसद भी रहे हैं। क्या अनुभव हैं आपके संसदीय राजनीति के। क्या आपको लगता है कि हमारे देश की संसद जनता की आकांक्षाओं इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करती है। बहुत से संगठन तो संसदीय राजनीति को खारिज करते हैं ?

अब देखिए संसदीय राजनीति की अपनी समस्याएं हैं। लेकिन तरीका तो यही है। इसकी रफ्तार थोड़ी धीमी है। काम करने का उतना प्रभावी नहीं हैं। लेकिन पिछले 50-60 साल से हम वोट कर रहे हैं। एक प्रैक्टिस (अभ्यास) हो गई है। राजनीति अभ्यास का भी मामला है। सही है लोग इससे नाराज है। और इसे खारिज भी करते हैं लेकिन ये अच्छा ही है। जितनी तरह की बाते होंगी जितनी तरह की आवाजें होगी उतना ही अच्छा है देश के लिए। देश की जो विविधता है वो यही है।

अब जबकि भारत और पाकिस्तान दोनों अपनी आजादी की सालगिरह मना रहे हैं। 64वीं सालगिरह। पाकिस्तान के शायर फैज अहमद फैज याद आते हैं। उन्होने भारत की आजादी को दाग दाग उजाला करार दिया था। आपकी उनसे दोस्ती ?

हां, फैज से हमारी अच्छी दोस्ती थी। लाहौर में दोस्तों के घर पर हमारी महफिलें जमती थीं। वो दारू पीता था और बैठते ही बोलत निकाल लेता था। लेकिन वो टू नेशन थियरी को नहीं मानता था। वो बॉर्डर को भी नहीं मानता था। वो आजादी को मानता था लेकिन इसे अधूरा करार देता था।

(विश्वदीपक इन दिनों नेशनल हेराल्ड से जुड़े हैं। उनके द्वारा लिया गया यह साक्षात्कार पहले 'अहा जिन्दगी' में प्रकाशित।)

कुलदीप नैयर का निधन : मजदूर मोर्चा परिवार की क्षति

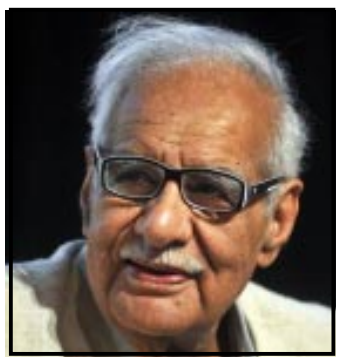

बतौर मजदूर मोर्चा सम्पादक मेरा कुलदीप नैयर से काफी व्यक्तिगत सम्पर्क रहा। मेरे लेखन से बौखला कर जब भी सरकारें मेरे विरुद्ध कोई कार्यवाही करती थी तो वे हमेशा मेरे समर्थन में खड़े हुए। प्रेस काउसिंल ऑफ इंडिया में पेश होने के लिए जब भी वकील की जरूरत पड़ती थी तो वे अपने वकील बेटे राजीव को मेरे साथ भेजते थे।

एक जमाने में जब शमशेर सिंह यहां के एसपी से पदोन्नत होकर डीआईजी गुड़गांव रेंज लगे थे तो 'मजदूर मोर्चा' में 'देवीलाल के जंगल में चौटाला का शेर, जिले के बाद अब रेंज लूटेगा शमशेर' शीर्षक से एक समाचार प्रकाशित होने से बौखलाये शमशेर ने जब मुझ पर गुंडों से हमला कराया तो मैं नैयर साहब से मिलने गया। शीर्षक पढ़कर पहले तो वह जोर से हंसे फिर बड़े मजाकिया लहजे में कहा था कि जब ऐसे बढ़िया-बढ़िया शीर्षक से खबरे लिखोगे तो ये डकैत अपनी भड़ास तो निकालेंगे ही, लेकिन चिंता की कोई बात नहीं, संघर्ष के रास्ते में आने वाली इन मुसबीतों से ऐसे ही लड़ो। लाहौर से आने वाले मेरे एक पत्रकार मित्र डा. लाल खान से मिलकर तो गदगद हो जाते थे। नैयर साहब जब भी पाकिस्तान जाते तो उनसे मिले बगैर कभी नहीं आते थे। इसी तरह जब भी लाल खान यहां आते तो कम से कम तीन-चार घंटे की एक बैठक तो उनके यहां होनी आवश्यक थी।

चाय का एक कप जो इधर उधार रह गया

करीब तीन वर्ष पूर्व नैयर साहब मेरे एक मित्र ज्योति संग की पुस्तक का विमोचन करने डीएवी सेंटेनरी कॉलेज में आये थे। मंच पर आने से पूर्व वे प्रिंसिपल के कमरे में बैठे तो चाय का आर्डर दिया गया। इसी बीच नैयर साहब ने पूछा कि कार्यक्रम में कितनी देर है तो मेरे मित्र विनोद मलिक ने कहा कि केवल आपका इंतजार हो रहा है। इस पर वे तुरन्त उठकर मंच की ओर चल दिये। प्रोग्राम समाप्त होने के बाद कार में बैठते हुए वे विनोद से बोले 'चाय का कप उधार रह गया।'

- सतीश कुमार, सम्पादक

एक क़द का उठ जाना

ओम थानवी

कुलदीप नैयर का जाना पत्रकारिता में सन्नाटे की ख़बर है। छापे की दुनिया में वे सदा मुखर आवाज़ रहे। इमरजेंसी में उन्हें इंदिरा गांधी ने बिना मुक़दमे के ही धर लिया था। श्रीमती गांधी के कार्यालय में अधिकारी रहे बिशन टंडन ने अपनी डायरी में लिखा है उन दिनों किसी के लिए यह साहस जुटा पाना मुश्किल था कि वह कुलदीप नैयर के साथ बैठकर चाय पी आए!

कहना न होगा कि वे सरकार की नींद उड़ाने वाले पत्रकार थे। आज ऐसे पत्रकार उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, जिनसे सत्ताधारी इस क़दर छड़क खाते हों। इसलिए उनका जाना सन्नाटे के और पसरने की ख़बर है।

कुलदीपजी का जन्म उसी सियालकोट में हुआ था, जहाँ के फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ थे। बँटवारे के बाद कुलदीप नैयर पहले अमृतसर, फिर सदा के लिए दिल्ली आ बसे। मिर्ज़ा ग़ालिब के मोहल्ले बल्लीमारान में उन्होंने शाम को निकलने वाले उर्दू अख़बार 'अंजाम' (अंत) से अपनी पत्रकारिता शुरू की। वे कहते थे- "मेरा आग़ाज़ (आरम्भ) ही अंजाम (अंत) से हुआ है!"

बाद में अज़ीम शायर और 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' का नारा देने वाले सेनानी हसरत मोहानी की सलाह पर -- कि उर्दू का भारत में कोई भविष्य नहीं -- वे अंगरेज़ी पत्रकारिता की ओर मुड़ गए। पढ़ने अमेरिका गए। फ़ीस जोड़ने के लिए वहाँ घास भी काटी, भोजन परोसने का काम किया। पत्रकारिता की डिग्री लेकर लौटे तो पहले पीआइबी में काम मिला। गृहमंत्री गोविंदवल्लभ पंत और फिर प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के सूचना अधिकारी हुए।

आगे यूएनआइ, स्टेट्समैन, इंडियन एक्सप्रेस आदि में अपने काम से नामवर होते चले गए। एक्सप्रेस में उनका स्तम्भ 'बिटवीन द लाइंस' सबसे ज़्यादा पढ़ा जाने वाला स्तम्भ था। बाद में उन्होंने स्वतंत्र पत्रकारिता की, जो आख़िरी घड़ी तक चली। वे शायद अकेले पत्रकार थे, जिनका सिंडिकेटेड स्तम्भ देश-विदेश के अस्सी अख़बारों में छपता था।

अनेक राजनेताओं और सरकार के बड़े बाबुओं से उनके निजी संबंध रहे। वही उनकी 'स्कूप' ख़बरों के प्रामाणिक स्रोत थे। वीपी सिंह ने उन्हें ब्रिटेन में भारत का राजदूत (उच्चायुक्त) नियुक्त किया था। इंदरकुमार गुजराल ने राज्यसभा में भेजा।

नैयर साहब से मेरा काफ़ी मिलना-जुलना रहा। जब उन्होंने अपनी जमा पूँजी से कुलदीप नैयर पुरस्कार की स्थापना की, मुझे उसके निर्णायक मंडल में रखा। हालाँकि पुरस्कार अपने नाम से रखना मुझे सुहाया न था। पहले योग्य पत्रकार हमें (और उन्हें भी) रवीश कुमार लगे। पुरस्कार समारोह में नैयर साहब उत्साह से शामिल हुए, अंत तक बैठे रहे।

उनसे मेरी पहली मुलाक़ात राजस्थान पत्रिका के संस्थापक-सम्पादक कर्पूरचंद कुलिश ने केसरगढ़ में करवाई थी। सम्भवत: 1985 में, जब मुझे सम्पादकीय पृष्ठ की रूपरेखा बदलने का जिम्मा सौंपा गया। कुलदीपजी का स्तम्भ अनुवाद होकर पत्रिका में छपता था। मैंने जब उन्हें कहा कि उनका बड़ा लोकप्रिय स्तम्भ है, उन्होंने बालसुलभ भाव से कुलिशजी की ओर देखकर कहा था -- सुन रहे हैं न?

मैंने उनसे पूछा कि आपको नायर लिखा जाय या नैयर? हम नायर लिखते थे। उन्होंने कहा कोई हर्ज नहीं। बाद में मुझे लगा कि नायर लिखने से दक्षिण का बोध होता है, पंजाब में नैयर (ओपी नैयर) उपनाम तो पहले से चलन में था!

जब मैं एडिटर्स गिल्ड का महासचिव हुआ, तब उनसे मेलजोल और बढ़ गया। घर आना-जाना हुआ। गिल्ड की गतिविधियों में, ख़ासकर चुनाव के वक्त, वे बहुत दिलचस्पी लेते थे। एमजे अकबर उन्हीं के प्रयासों से गिल्ड के अध्यक्ष हुए। जब गिल्ड द्वारा आयोजित जनरल मुशर्रफ़ की बातचीत के बुलावों में अकबर ने मनमानी की, मैंने (आयोजन के बाद) इस्तीफ़ा दे दिया था।

तब पहली बार गिल्ड की आपत्कालीन बैठक (ईजीएम) बुलाई गई। सम्पादकों की व्यापक बिरादरी ने -- विशेष रूप से बीजी वर्गीज़, अजीत भट्टाचार्जी, हिरणमय कार्लेकर, विनोद मेहता आदि -- ने मेरा ही समर्थन किया। पर नैयर साहब चाहते थे मैं इस्तीफ़ा वापस ले लूँ। हालाँकि बाद में अकबर ने ईजीएम में खेद प्रकट किया और बात ख़त्म हुई।

भारत-पाक दोस्ती के नैयर साहब अलमबरदार थे। उन्होंने ही सरहद पर मोमबत्तियों की रोशनी में भाईचारे के पैग़ाम की पहल की। इस दफ़ा वे अटारी-वाघा नहीं जा सके। पर उन्होंने अमृतसर के लिए गांधी शांति प्रतिष्ठान से चली बस को रवाना किया। अमृतसर और सरहद के आयोजन में मुझे भी शामिल होने का मौक़ा मिला। मुझे दिली ख़ुशी हुई जब लोगों को हर कहीं नैयर साहब के जज़्बे और कोशिशों की याद जगाते देखा।

कुलदीप नैयर क़द्दावर शख़्स थे और क़द्दावर पत्रकार भी। बौनी हो रही पत्रकारिता में उनका न रहना और सालता है।